एक ही पक्ष के बीच अलग-अलग अवधि के लिए किराए की वसूली के लिए दो मुकदमों में। यह माना गया था कि विभिन्न पेरिओ के लिए किराए की वसूली के लिए दायर किए गए बाद के मुकदमे पर नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 10 के तहत रोक लगाने के लिए उत्तरदायी नहीं था, क्योंकि मुद्दे में मामला समान नहीं होगा।

i. ऊपर दर्ज कारणों के लिए, इस संशोधन याचिका को स्वीकार किया जाता है। लागू आदेश को रद्द किया जाता है। हालांकि, लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा। पक्षकारों को उनके वकील के माध्यम से 25 मार्च, 1991 को ट्रायल कोर्ट में पेश होने का निर्देश दिया जाता है। सी.एम. में कोई आदेश आवश्यक नहीं है।

J.S.T.

एम. आर. अग्निहोत्री, जे. के समक्ष

बैंक ऑफ इंडिया, - *याचिकाकर्ता।*

बनाम

पीठासीन अधिकारी, केंद्र सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण-सह-श्रम न्यायालय, चंडीगढ़ और अन्य- *उत्तरदाता।*

सिविल रिट याचिका सं. 1987 का 3148.

11 मार्च, 1991.

बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) विनियम,

1916 - बैंक ऑफ इंडिया (अधिकारी) सेवा विनियमन, 1979 - बैंकिंग कंपनी (उपक्रम का अधिग्रहण और हस्तांतरण) अधिनियम, *1970 - धारा 19 - समाप्ति - बहाली - महाप्रबंधक को* 1976 *विनियम के* तहत स्टाफ अधिकारी के नियुक्ति प्राधिकारी के रूप में नामित *किया गया है - अधीनस्थ प्राधिकारी अर्थात क्षेत्रीय प्रबंधक द्वारा पारित समाप्ति का आदेश अमान्य है - कामगार पूर्ण वेतन के साथ बहाली का हकदार है - बैंक को इस स्तर पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा समाप्ति का नया आदेश पारित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है - दोष लाइलाज है।*

यह माना गया कि नियोक्ता के मनमाने और अवैध कार्यों के खिलाफ विभिन्न कॉर्पोरेट निकायों और सार्वजनिक उपक्रमों के श्रमिकों और अन्य कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए, संविधान के अनुच्छेद 311 के प्रावधानों की प्रयोज्यता आवश्यक नहीं है। यह केवल संविधान का अनुच्छेद 311 नहीं है, जो नियुक्ति प्राधिकारी के अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा किसी कर्मचारी को बर्खास्त करने या हटाने पर रोक लगाता है। दूसरी ओर, समय के प्रवाह और स्वामी और नौकर के सदियों पुराने मान्यता प्राप्त संबंध से, यह सेवा न्यायशास्त्र का एक अभिन्न अंग बन गया है, कि, नियुक्ति प्राधिकारी के अधीनस्थ प्राधिकारी किसी कर्मचारी को उसकी सेवा से बर्खास्त नहीं कर सकता है। कोई कर्मचारी सिविल सेवक है या नहीं, यह इस उद्देश्य के लिए महत्वपूर्ण नहीं है। सामान्य खंड अधिनियम के प्रावधान, प्राकृतिक न्याय और नियमों और विनियमों के सिद्धांतों के साथ मिलकर वैधानिक या अन्यथा, नियुक्ति प्राधिकारी के अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा अधिकार क्षेत्र के अंधाधुंध प्रयोग के खिलाफ कर्मचारियों की रक्षा के लिए समान रूप से प्रभावी हैं।

(पैरा 8)

आगे कहा गया कि प्रतिवादी को एक कामगार मानते हुए और यह

कि कर्मकार की सेवाओं की समाप्ति का आदेश नियुक्ति प्राधिकारी के अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा पारित किया **गया** था, फिर भी प्रबंधन को कर्मकार के खिलाफ कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए ताकि वास्तव में सक्षम प्राधिकारी से हस्ताक्षर करके एक नया आदेश पारित किया जा सके। यह उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि इस तरह का पाठ्यक्रम न तो कानून में स्वीकार्य है और न ही उचित है, क्योंकि इसमें अनुशासनात्मक कार्यवाही के विभिन्न चरणों में अनुशासनात्मक और सक्षम प्राधिकारी द्वारा दिमाग लगाने का सवाल शामिल है, आरोप पत्र की सेवा से लेकर अंतिम आदेश पारित करने तक।

(पैरा 12)

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत याचिका, *प्रार्थना करते हुए कि :-*

i. कि मामले के रिकॉर्ड की मांग की जाए;

ii. कि रिकॉर्ड के अवलोकन और पक्षों के वकीलों को सुनने के बाद, यह माननीय न्यायालय निम्नलिखित राहत प्रदान करने की कृपा करे;

a) दिनांक 9 अप्रैल, 1987 (अनुलग्नक *पी-16) के दिनांक 9 मई,* 1987 *के भारत सरकार के राजपत्र में प्रकाशित* अधिनिर्णय जिसके द्वारा प्रत्यर्थी नं. 2 को पिछले वेतन के साथ बहाल कर दिया गया है को निरस्त करते हुए प्रमाण-पत्र की प्रकृति में एक रिट जारी *की जाए;*

b) प्रतिवादी संख्या 2 और 3 को उपयुक्त रिट या आदेश जारी करके *अधिनिर्णय (अनुलग्नक* पी-16) *को लागू करने से नियंत्रित करें;*

iii. कि कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जो यह माननीय

न्यायालय तथ्यों में उपयुक्त और उचित समझ सकता है और मामले की परिधि कृपया जारी की जा सकती है;

iv. *कि कोई अन्य राहत जिसके लिए याचिकाकर्ता मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में हकदार पाया जा सकता है, इस माननीय न्यायालय द्वारा दी जा सकती है;*

v. *कि मामले की तात्कालिकता को ध्यान में रखते हुए अनुलग्नकों के प्रमाणित प्रतियां, जिनकी सच्ची प्रतियां संलग्न की गई हैं, दाखिल करने की आवश्यकता को समाप्त किया जाए;*

vi. *यह कि प्रतिवादियों को इस याचिका के अग्रिम नोटिस देने की आवश्यकता को इस मामले में तात्कालिकता को ध्यान में रखते हुए माफ कर दिया जाए क्योंकि इस स्तर पर उन्हें सेवा देने की कोई भी पहल अनावश्यक रूप से इस माननीय न्यायालय में याचिका दायर करने में देरी करेगी;*

vii. *कि इस याचिका की लागत याचिकाकर्ता के पक्ष में और प्रतिवादियों के खिलाफ दी जा सकती है;*

viii. *कि इस माननीय न्यायालय में याचिका के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश/अधिनिर्णय (अनुलग्नक* पी-16) *के प्रचालन पर रोक लगाई जा सकती है।*

1990 का *सीएम* 8025

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 *के तहत आवेदन में प्रार्थना की गई है कि आवेदन स्वीकार किया जाए, याचिकाकर्ता बैंक को आवेदक प्रत्यर्थी को पूर्ण वेतन का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए जो उसकी वरिष्ठता और स्थिति के अन्य अधिकारी अतीत में भुगतान किए गए वेतन में अंतर के बकाया के साथ जोड़ रहे हैं और जिसके लिए आवेदक प्रत्यर्थी हकदार*

था।

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता जगत अरोड़ा और वरिष्ठ अधिवक्ता एलएम सूरी के साथ अधिवक्ता अरुण कुमार *उपस्थित थे।*

एन. के. सोढ़ी, वरिष्ठ अधिवक्ता वी. पी. शर्मा और सुश्री दीपाली पुरी, अधिवक्ता, प्रतिवादी *संख्या 2 की ओर से।*

निर्णय

एम. आर. अग्निहोत्री, जे.

1) संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत दायर इस याचिका के माध्यम से, बैंक ऑफ इंडिया के प्रबंधन ने केंद्र सरकार के औद्योगिक न्यायाधिकरण-सह-श्रम न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा दिए गए 9 अप्रैल, 1987 (अनुबंध P 16) के फैसले को रद्द करने के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, जिसमें कहा गया है कि प्रतिवादी बीके सरीन, कामगार की सेवाओं की समाप्ति शून्य थी क्योंकि इस आशय का आदेश सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं किया गया था। इस प्रकार, कामगार पूर्ण वेतन के साथ अपने पद पर बहाली का हकदार था।

2) संक्षेप में कहा गया है, प्रतिवादी बी.के. सरीन को 17 अक्टूबर 1970 को याचिकाकर्ता-बैंक ऑफ इंडिया के साथ क्लर्क-कम-टाइपिस्ट के रूप में नियुक्त किया गया था।

उन्हें 1 दिसंबर, 1976 को स्टाफ अधिकारी के रूप में पदोन्नत किया गया था। उन्होंने उस क्षमता में तीन साल तक काम किया, जब उन्हें पटना ले जाया गया। कामगार के अनुसार, चंडीगढ़ से पटना में यह स्थानांतरण इसलिए किया गया था ताकि कर्मचारी से उसकी यूनियन गतिविधियों का बदला लिया जा सके। तथापि, कर्मकार के विरुद्ध अनुशासनिक जांच शुरू की गई थी और जांच रिपोर्ट के आधार पर प्रतिवादी कर्मकार की सेवाएं 26 नवम्बर, 1983 को समाप्त कर दी गई थीं। कामगार ने निम्नलिखित औद्योगिक विवाद उठाया जिसे 11 फरवरी, 1986 को केन्द्रीय सरकार औद्योगिक अधिकरण को भेजा गया था -

> "क्या बैंक ऑफ इंडिया द्वारा 26 नवम्बर, 1983 से चंडीगढ़ की सेक्टर 17-बी शाखा में स्टाफ अधिकारी बाल किशन सरीन की सेवाएं समाप्त करने की कार्रवाई कानूनी और न्यायोचित है? यदि नहीं, तो वह किस राहत के हकदार हैं?"

3) यद्यपि कामगार ने विभिन्न आधारों पर अपनी सेवाओं की समाप्ति को चुनौती दी, जिसमें जांच के दौरान उचित अवसर से वंचित करना, गवाहों से जिरह करने से इनकार करना, याचिकाकर्ता को जांच के दौरान पेश किए गए और भरोसा किए गए भौतिक दस्तावेजों की आपूर्ति न करना आदि शामिल हैं, फिर भी आक्षेपित आदेश के खिलाफ मुख्य हमला यह था कि यह पूरी तरह से *शून्य* और क्षेत्राधिकार के बिना था, जहां तक याचिकाकर्ता को महाप्रबंधक द्वारा नियुक्त किया

गया है, उसकी सेवाओं को जोनल प्रबंधक द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता है, जो महाप्रबंधक के अधीनस्थ था।

4) बैंक ने अपने जवाब में इस संदर्भ का जोरदार विरोध किया और संदर्भ पर विचार करने और प्रयास करने के लिए ट्रिब्यूनल के अधिकार क्षेत्र पर सवाल उठाया और यह भी आरोप लगाया कि प्रतिवादी औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 की धारा 2 (s) के अर्थ के भीतर एक कामगार नहीं था। आगे यह दलील दी गई कि याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने का आदेश सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया था। विद्वान ट्रिब्यूनल ने पाया कि संदर्भ सुनवाई योग्य था और श्रम न्यायालय के पास प्रतिवादी की समाप्ति के आदेश की वैधता में जाने का अधिकार क्षेत्र था, भले ही कामगार ने पहले सिविल कोर्ट का दरवाजा खटखटाया था जब उसकी सेवाओं को बर्खास्त करने या समाप्त करने का कोई आदेश पारित नहीं किया गया था। रिकॉर्ड पर साक्ष्य के पूर्ण मूल्यांकन के बाद, विद्वान ट्रिब्यूनल ने माना कि समाप्ति का आदेश अमान्य था और इसे नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं किया गया था, क्योंकि कामगार को महाप्रबंधक द्वारा 1 दिसंबर, 1976 को स्टाफ अधिकारी के रूप में पदोन्नत किया गया था, और उसकी सेवाओं को जोनल मैनेजर द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता था, जो महाप्रबंधक से कनिष्ठ प्राधिकारी था।

5) समाप्ति के आदेश के अधिकार क्षेत्र की जड़ तक जाने वाली बुनियादी खामी का सामना करते हुए, प्रबंधन ने ट्रिब्यूनल

के समक्ष तर्क देने की मांग की कि हालांकि बैंक के सेवा विनियमों में एक संशोधन किया गया था, जिसके तहत नियुक्ति की शक्ति प्रत्यायोजित की गई थी, फिर भी ट्रिब्यूनल अपने स्तर पर कामगार के खिलाफ एक स्वतंत्र जांच कर सकता था। इसे प्रतिवादी कामगार के मामले के लिए अनावश्यक और प्रतिकूल मानते हुए, विद्वान ट्रिब्यूनल ने समाप्ति आदेश को शून्य माना, जिसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं किया गया था और उसे पूर्ण वेतन के साथ सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया गया था।

6) याचिकाकर्ता-प्रबंधन के वकील ने दो तरफा दलीलें दी हैं। सबसे पहले, जोनल मैनेजर द्वारा याचिकाकर्ता की सेवा समाप्ति की कार्रवाई को इस आधार पर सही ठहराने का प्रयास किया गया है कि बैंक ऑफ इंडिया (अधिकारी) सेवा विनियम, 1979 में संशोधन करके, बर्खास्तगी की शक्ति जोनल मैनेजर को सौंप दी गई थी; और दूसरा, यह मानते हुए कि कर्मकार की सेवाओं की समाप्ति का अंतिम आदेश पारित करने के चरण में बैंक द्वारा कोई गलती की गई थी, इस मामले पर उस चरण से नए सिरे से निर्णय लिया जा सकता है, जिसका अर्थ है कि कर्मकार के विरुद्ध जांच को बरकरार रखकर और बैंक को कर्मकार की सेवाओं की बर्खास्तगी या समाप्ति का आदेश पारित करने की अनुमति देकर, जिस पर सक्षम व्यक्ति से हस्ताक्षर किए जा सकते हैं।

7) सम्मान के साथ, मुझे विद्वान वकील की दो प्रस्तुतियों में से किसी में भी कोई दम नहीं दिखता है और न ही विद्वान

ट्रिब्यूनल के सुविचारित निर्णय में कोई कानूनी खामी है। यह एक स्वीकार्य तथ्य है कि बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) विनियम, 1976 जो बैंकिंग कंपनी (उपक्रमों का अधिग्रहण और अंतरण) अधिनियम, 1970 की धारा 19 के तहत बनाए गए सांविधिक प्रकृति के है, के प्रावधानों के अनुसार अधिकारियों पर दंड लगाने के लिए उत्तरदाता-कामगार की स्थिति और श्रेणी के अधिकारी कर्मचारी पर दंड लगाने के लिए सक्षम प्राधिकारी महाप्रबंधक था, न कि जोनल प्रबंधक, जो महाप्रबंधक के अधीनस्थ अधिकारी है। उक्त विनियमों में कोई संशोधन नहीं किया गया है और इसका उल्लंघन करने वाला आदेश स्पष्ट रूप से *अमान्य* होगा। केवल तथ्य यह है कि 1979 में, अर्थात याचिकाकर्ता की पदोन्नति के लगभग तीन वर्ष बाद, सेवा विनियमों का एक सेट, अर्थात् बैंक ऑफ इंडिया (अधिकारी) सेवा विनियम, 1979 बैंक द्वारा एक भिन्न प्रयोजन के लिए तैयार किया गया था अर्थात वेतन और अन्य परिलब्धियां प्रदान करने, पदोन्नति, वरिष्ठता का निर्धारण, सेवानिवृत्ति की आयु निर्धारित करना आदि और वह भी ऊपर उल्लिखित अनुशासन और अपील विनियमों में संशोधन या अनुपूरण किए बिना, प्रतिवादी-कामगार की सेवा शर्तों को शासित करते हुए, कर्मकार को अनुशासन और अपील विनियमों के तहत उपलब्ध सांविधिक सुरक्षा से वंचित नहीं कर सकता था।

8) माननीय उच्चतम न्यायालय और विभिन्न उच्च

न्यायालयों के अनेक न्यायिक निर्णयों द्वारा यह स्पष्ट किया जा चुका है कि नियोक्ता के मनमाने और अवैध कार्यों के विरुद्ध विभिन्न निगमित निकायों और सार्वजनिक उपक्रमों के कर्मकारों और अन्य कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए संविधान के अनुच्छेद 311 के उपबंधों की प्रयोज्यता आवश्यक नहीं है। यह केवल संविधान का अनुच्छेद 311 नहीं है, जो नियुक्ति प्राधिकारी के अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा किसी कर्मचारी को बर्खास्त करने या हटाने पर रोक लगाता है। दूसरी ओर, समय के प्रवाह के साथ और स्वामी और नौकर के सदियों पुराने मान्यता प्राप्त संबंधों के साथ, यह सेवा न्यायशास्त्र का एक अभिन्न अंग बन गया है, कि नियुक्ति प्राधिकारी के अधीनस्थ प्राधिकरण एक कर्मचारी को अपनी सेवा से बर्खास्त नहीं कर सकता है। कोई कर्मचारी सिविल सेवक है या नहीं, यह इस उद्देश्य के लिए महत्वपूर्ण नहीं है। सामान्य खंड अधिनियम के प्रावधान, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और नियम और विनियम, वैधानिक या अन्यथा के साथ मिलकर, नियुक्ति प्राधिकारी के अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा अधिकार क्षेत्र के अंधाधुंध प्रयोग के खिलाफ कर्मचारियों की रक्षा के लिए समान रूप से प्रभावी हैं। इस संबंध में, निम्नलिखित निर्णयों का संदर्भ उपयोगी होगा, –*गड्डे वेंकटेश्वर राव* बनाम *आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य*[1], *दिल्ली नगर निगम बनाम श्री राम प्रताप सिंह*[2], *ग्वालियर जिला सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम रमेश चंद्र मंगल और अन्य*[3], *मैसर्स हिंदुस्तान*

[1] A.I.R. 1966 S.C. 828.
[2] A.I.R. 1976 S.C. 2301
[3] 1979 (2) S.L.R. 464.

लीवर लिमिटेड के कामगार और अन्य बनाम मैसर्स हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड का *प्रबंधन*[4], पंजाब *राज्य सहकारी आपूत एवं विपणन संघ लिमिटेड बनाम अतिरिक्त रजिस्ट्रार (औद्योगिक) सहकारी समितियां,* पंजाब[5], अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य *बनाम एस. नारायणनकुट्टी और अन्य*[6], *भारत संघ और एक अन्य बनाम श्री बाबू राम लला*[7] और *मेसर्स वाराणसी एलेकट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग, यूपी स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड औद्योगिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद और अन्य उत्तर प्रदेश में*[8] ।

9) प्रबंधन याचिकाकर्ता के वकील ने प्यारे *लाल शर्मा बनाम एमडी जम्मू* एंड *कश्मीर इंड लिमिटेड और अन्य*[9] में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का हवाला देते हुए कहा है कि चूंकि भारत के संविधान का अनुच्छेद 311 बैंक के कर्मचारियों पर लागू नहीं होता है, इसलिए वे संविधान के अनुच्छेद 311 (1) के संरक्षण का दावा नहीं कर सकते। इसका अर्थ यह है कि भले ही प्रतिवादी-कामगार की सेवाओं की समाप्ति का आक्षेपित आदेश नियुक्ति प्राधिकारी के अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया हो, फिर भी कर्मकार की समाप्ति को कानून में वैध माना जाना था।

10) सम्मान के साथ, याचिकाकर्ता-बैंक के द्वारा प्यारे

[4] 1984-1 L.L.J. 388.
[5] 1984 (2) SD.R, 217.
[6] 1985 (3) S.L.R. 91.
[7] A.I.R. 1988 S.C. 344.
[8] 1990 Lab. I.C. 1331.
[9] 1990-1 L.L.J. 32.

लाल शर्मा *के मामले (सुप्रा) में फैसले की पूरी तरह से गलत व्याख्या की गई* है, क्योंकि उपरोक्त मामले में फैसले के पैरा 19 में विशेष रूप से उल्लेख किया गया था कि "एसोसिएशन के लेखों या कंपनी के नियमों में कंपनी के कर्मचारियों को समान सुरक्षा देने का कोई प्रावधान नहीं है जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 (1) के तहत सिविल सेवकों को दिए जाते हैं । इसलिए कंपनी का कोई कर्मचारी यह दावा नहीं कर सकता कि जिसके द्वारा उसे नियुक्त किया गया था, उसे उसके अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा बर्खास्त या हटाया नहीं जा सकता है । वर्तमान मामले में यह स्थिति नहीं है क्योंकि बैंक की अनुशासनात्मक और प्रक्रियात्मक शक्तियों को विनियमित करने वाले सांविधिक विनियमों के अनुसार, प्रतिवादी-कामगार और इसी तरह स्थित अन्य कर्मचारियों के मामले में सेवाओं को हटाने या समाप्त करने का आदेश केवल महाप्रबंधक द्वारा पारित किया जा सकता है, न कि जोनल प्रबंधक द्वारा - महाप्रबंधक के अधीनस्थ अधिकारी। नतीजतन, विद्वान श्रम न्यायालय का यह निष्कर्ष कि याचिकाकर्ता की सेवाओं की समाप्ति का आदेश नियुक्ति प्राधिकारी के अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया था, को बरकरार रखा जाता है और इसके खिलाफ चुनौती को खारिज किया जाता है।

11) जहां तक इस सवाल का सवाल है कि क्या प्रतिवादी बी. के. सरीन एक कामगार थे या नहीं, ट्रिब्यूनल द्वारा द्वारा इस पर उचित रूप से विचार नहीं किया गया है। सबसे पहले, ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं थी; और दूसरी बात,

1984 के पूर्व निर्णय एलसीए सं. 82, दिनांक 5 जनवरी, 1985 (अनुलग्नक P 8) को ध्यान में रखते हुए, वही पार्टियों के बीच, यह गंभीरता से चुनौती नहीं दी जा सकती थी कि प्रतिवादी कामगार नहीं था। उपर्युक्त अधिनिर्णय में केन्द्र सरकार के श्रम न्यायालय, चण्डीगढ़ द्वारा निर्णीत मुद्दा संख्या 1 निम्नानुसार है:-

> *"मुद्दा* संख्या 1.
>
> यह मुद्दा अदालत के अधिकार क्षेत्र पर प्रतिवादी की आपत्ति को पूरा करने के लिए तैयार किया गया था, इस दलील पर कि प्रबंधकीय कर्मचारियों का सदस्य होने के नाते याचिकाकर्ता एक कामगार नहीं था। उनके लिए पूरी निष्पक्षता के साथ, प्रबंधन के विद्वान प्रतिनिधि ने एसके *वर्मा बनाम महेश चंदेरा, ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 1462, और* वेद पाल *बनाम मैसर्स* डेल्टन केबल, *ए.आई.आर. 1984 एस.सी.* 914, के मामलों में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियों के मद्देनजर अपनी आपत्ति पर जोर नहीं दिया।

तदनुसार, प्रबंधन के खिलाफ इस मुद्दे का जवाब दिया जाता है।"

12) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील की अंतिम दलील पर आते हुए, कि प्रतिवादी को एक कामगार मानते हुए और आगे कि कर्मचारी की सेवाओं की समाप्ति का आदेश नियुक्ति

प्राधिकारी के अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया था, फिर भी प्रबंधन को वास्तव में सक्षम प्राधिकारी से हस्ताक्षर करके एक नया आदेश पारित करने के लिए कामगार के खिलाफ कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए, यह उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि इस तरह का पाठ्यक्रम न तो कानून में स्वीकार्य है और न ही उचित है। अपनी दलील के समर्थन में विद्वान वकील ने प्राधिकरण पर भरोसा किया। *दिल्ली नगर निगम* का मामला (सुप्रा) (: एआईआर 1976 एससी 2301)। यह विवाद को कोई समर्थन नहीं देता है, क्योंकि वर्तमान मामला ऐसी गलती का नहीं है जो अंतिम चरण में आ गई है, बल्कि चूंकि इसमें अनुशासनात्मक कार्यवाही के विभिन्न चरणों में अनुशासनात्मक और सक्षम प्राधिकारी द्वारा विचार के प्रयोग का प्रश्न शामिल है, जो आरोप-पत्र दाखिल करने से लेकर अंतिम आदेश पारित करने तक होता है।

13) उपरोक्त कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, मैं केन्द्र सरकार औद्योगिक अधिकरण-सह-श्रम न्यायालय, चण्डीगढ़ के दिनांक 9 अप्रैल, 1987 (अनुलग्नक P 8) के निर्णय को बरकरार रखता हूं और याचिका को खारिज करता हूं। यद्यपि प्रतिवादी-कामगार को आक्षेपित निर्णय के कार्यान्वयन में बहाल कर दिया गया है, लेकिन वर्तमान याचिका की कार्यवाही के दौरान यह मेरे ध्यान में लाया गया है कि उन्हें अब तक पूर्ण वेतन का भुगतान नहीं किया गया है। यदि ऐसा है, तो याचिकाकर्ता-बैंक ऑफ इंडिया के प्रबंधन को निर्देश दिया जाता

है कि वह अपनी सेवाओं की समाप्ति की तारीख से यानी 26 नवंबर, 1983 को बहाली की तारीख तक दो महीने की अवधि के भीतर अपने वेतन की बकाया राशि, यानी नियमों के तहत उसे स्वीकार्य पूर्ण वापस मजदूरी का भुगतान करे, जिसमें विफल रहने पर याचिकाकर्ता-प्रबंधन को देय राशि की 12 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज का भुगतान करना होगा, देय होने की तारीख से वास्तविक संवितरण की तारीख तक। प्रतिवादी इस याचिका की लागत का भी हकदार होगा जो 1,000 रुपये निर्धारित है।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

अंकिता गुप्ता
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
बिलासपुर यमुनानगर

आर.एन.आर.

Before : *Jawahar Lai Gupta, J.*

DEVINDRA KUMAR,–*Petitioner,*

बनाम

पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, *उत्तरदाता।*

सिविल रिट याचिका सं. 1987 का 1322 ।

29 अप्रैल, 1991।

भारत का संविधान, 1950 226-पंजाब *विश्वविद्यालय कैलेंडर, खंड* III-पृष्ठ 413, *आरएल।* 9- *पंजाब विश्वविद्यालय विनियम* 27.1, 27.2 और 27.3 - *ग्रेस मार्क्स प्रदान करना - उम्मीदवार अपने पिछले प्रदर्शन में सुधार करने के लिए एमए द्वितीय के कुछ पेपरों में फिर से उपस्थित होता है - पुन: उपस्थित परिणाम में, उम्मीदवार एमए द्वितीय में* 16 *अतिरिक्त अंक प्राप्त करता है - संतुष्ट नहीं होने पर,* दोनों पुन: उपस्थित पेपरों के पुनर्मूल्यांकन के लिए आवेदन करने वाला उम्मीदवार - एक पेपर में पुनर्मूल्यांकन के परिणामस्वरूप, अंक 8 से कम हो जाते *हैं - विश्वविद्यालय कुल मिलाकर* उम्मीदवार का परिणाम घोषित करता है। *पुनर्मूल्यांकन के परिणाम के आधार पर 384 अंक - उम्मीदवार उसके बाद 8 अनुग्रह अंक देने के लिए आवेदन करता है - विश्वविद्यालय ने* दावे को खारिज कर दिया - *नियम 9 के मद्देनजर 8 अनुग्रह अंक देने का दावा कानूनी रूप से अस्थिर है - चूंकि स्कोर में 5 प्रतिशत से अधिक की कमी आई* थी, इसलिए विश्वविद्यालय को पुनर्मूल्यांकन द्वारा परिणाम को कम घोषित करने में उचित ठहराया गया था - *उम्मीदवार का ग्रेस मार्क्स देने का दावा एमए परीक्षा के कुल अंकों का 1 प्रतिशत अनुचित है क्योंकि वह एमए के दो पेपरों में उपस्थित हुआ था। केवल //* - उम्मीदवार उस परीक्षा के अंकों के 1 प्रतिशत का हकदार है जिसमें वह पुन: उपस्थित होता है -

चूंकि दो पुन: परीक्षा पत्रों में 1 प्रतिशत अनुग्रह अंक देने से परिणाम में कोई बदलाव नहीं होगा, इसलिए उम्मीदवार ^ ग्रेस मार्क्स देने का हकदार नहीं है - ग्रेस मार्क्स देने के लिए सख्त निर्माण होना चाहिए - अदालतों को स्वतंत्र रूप से ग्रेस मार्क्स देने के लिए सहमत होने के बजाय योग्यता के पक्ष में झुकना चाहिए ।